P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

आदिवासी स्त्री अस्मिता और निर्मला पुतुल की कविताएँ

सारांश

समकालीन कविता लेखन में निर्मला पुतुल की कविताएँ अपना विशेष महत्व रखती हैं। इनके दो कविता संग्रह – 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' और 'बेघर सपने' अपनी आदिवासी अस्मिता की यथार्थ अभिव्यक्ति करता है। इसमें आदिवासी स्त्री के मर्म की अभिव्यक्ति मिलती है। एक ओर आदिवासी होने की पीड़ा तथा दूसरी ओर स्त्री जीवन की पीड़ा उनके दोहरे दर्द को बयां करती दिखती हैं। उनकी कविताएँ आज की सच्चाई को हमारे समक्ष उपस्थित कर देती है। भूमंडलीकरण तथा पश्चिमीकरण के इस दौर में स्त्री आदिवासी होने की व्यथा को नया स्वर प्रदान करती हैं, निर्मला पुतुल की कविताएँ। आदिवासी समाज का पुरुष हो या स्त्री – दोनों ही सभ्य समाज की सभ्यता को मुँह चिढ़ाते दिखते हैं। उन्हें उनके अनेकानेक प्रश्नों का जवाब देने के लिए भी प्रतिबद्ध होना पड़ता है। निर्मला जी ने अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से आदिवासी जीवन की गहरी पड़ताल की है। इस तरह उनकी कविताओं में आदिवासी जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है।

मुख्य शब्दः अस्मिता, भूमंडलीकरण, प्रतिबद्ध, उन्मुक्त, विद्रोह, चकाचौंध, यंत्रणा, सम्भ्रांत, कतारबद्ध, पुश्तैनी, पश्चिमीकरण, कटिबद्ध, अभिव्यक्त, मशीनीकरण, विशद, रूढ़िवादियों, विरुद्ध, दण्डनीय, प्रस्ताव, तटस्थ, चतुर्दिक।

प्रतिभा प्रसाद
विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग,
कुल्टी कॉलेज,
कुल्टी, पश्चिम बर्द्धमान

प्रस्तावना

आज जहाँ सभ्यता मशीनीकरण, भूमण्डलीकरण के दौर में काफी उन्नत मानी जा रही है, वहीं समाज का एक तबका, जो आदिवासी नाम से जाना जाता है वह आज भी न सिर्फ सामर्थ्य और शक्ति के रूप में बल्कि लोकमान्यताओं के कारण पिछड़ा दिखाई देता है, जबकि इन्हीं लोकमान्यताओं ने इसे सम्बल प्रदान किया है। उनकी सहजता एवं सरलता का लोगों ने लाभ उठाया तथा उनके जीवन के कोमल परतों को खोलकर रख दिया। एक स्त्री के रूप में आदिवासी स्त्रियाँ अपने ही घर में दोयम दर्जे का व्यवहार सहने को विवश हैं। उन्हें न सिर्फ लोकव्यवहार के नाम पर बल्कि स्त्री होने के कारण भी दण्डनीय अवस्था झेलनी पड़ती है। उनकी अपनी अस्मिता उन्हें विद्रोही बना देती है। उनका यह विद्रोह कहीं 'बाहामुनी' के रूप में तो कहीं 'सजोनी किस्कू' के रूप में निकल कर हमारे समक्ष प्रत्यक्ष आ खड़ा होता है। आदिवासी स्त्री कभी तो बेच दी जाती हैं तो कभी मार दी जाती हैं। वह अपनी जमीन तलाशती है। वह इस कार्य को करते हुए बेचैन हो उठती हैं। वह अपनी पहचान खोजती चलती हैं। 'अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री' कविता में कवयित्री कहती हैं – ''मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते/मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से/क्या है मात्र एक स्वप्न के/स्त्री के लिए – घर संतान और प्रेम?/क्या।''[1] एक ओर स्त्री होने की गहरी पीड़ा झलकती हुई दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर अपने पहचान की पीड़ा दिखाई देती है। वह अपने लिए मांग करती है कि ''एक उन्मुक्त आकाश/जो शब्द से परे हो/एक हाथ/जो हाथ नहीं/उसके होने का आभास हो।''[2] वह अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए मानों व्यग्र दिखाई देती है। उसकी अपनी अस्मिता, उसके होने का अहसास उसके भीतर भर देती है। अपनी कविताओं के माध्यम से वह कहती हैं कि औरत सब कुछ सहती है परन्तु विद्रोह नहीं करती क्योंकि उसका विद्रोह करना उसके संस्कारों में शामिल नहीं है। वह कहती हैं –''आँसू पीती है/घूँट–घूँटकर जीती है/मोम–सी पिघलती है/कुछ न कहती है/रोज जन्मती मरती है।''[3] अतः उसे एक ही जीवन में बारम्बार जन्म लेना और मरना पड़ता है। वह अपने होठों को सीती चलती है क्योंकि वह मर्दों की बनाई इस दुनिया में स्वयं को उसकी धाती मानती है। यह विचार आज स्त्रियों ने त्याग दिया है। वह आज विद्रोह करती दिखती है। आज के समय में रहकर भी वह आदिवासी स्त्री बड़ी ही सहजता से आधुनिक चकाचौंध से दूर रहकर जीना चाहती है। यही कारण है कि वह अपने पिता से आग्रह करती है

कि वहाँ मुझे मत ब्याहना जहाँ ब्याह के लिए घर की बकरियाँ बेचनी पड़े। जहाँ जंगल, नदी, पहाड़ नहीं हो, जहाँ अनेकानेक मोटरगाड़ियाँ और बड़े–बड़े दुकान हों। जहाँ खुला आँगन न हो, जहाँ मुर्गे की बाँग पर सुबह नहीं होती हो। ऐसा वर नहीं चुनना जो पोचई और हड़िया में दिन–रात डूबा रहता हो क्योंकि मेरा वर खराब निकलने पर बदली नहीं हो सकता। साथ–ही वह यह भी इच्छा प्रकट करती है कि वैसे व्यक्ति के हाथों में मेरा हाथ नहीं देना जिस हाथ ने कभी पेड़ नहीं लगाया हो, फसलें नहीं उगाई हो, न ही किसी का बोझ नहीं उठाया हो। वह अपने पिता से वहाँ ब्याहने की बात करती है जहाँ उसके पिता सुबह जाकर शाम तक लौट आएँ। इन सबके साथ वह चाहती है कि उसका ब्याह वहाँ हो, जहाँ ईश्वर नहीं आदमी बसते हों – ''उस देश में ब्याहना/जहाँ ईश्वर कम आदमी ज्यादा रहते हो/बकरी और शेर/एक घाट पानी पीते हों जहाँ/वहीं ब्याहना मुझे।''[4] व्यंग्य भरे शब्दों में निर्मला जी ने आदिवासी लड़की का परिचय देते हुए कहती हैं कि वह ऊपर से काली परन्तु चमकते दाँतों सी स्वभाव में सबल एवं शांत होती है। जूड़े में हरी–पीली पत्तियाँ लगाकर कतारबद्ध हो मॉदल की थाप में नृत्य करती हैं। गीत संगीत से उनका अंतरंग रिश्ता होता है। आदिवासी स्त्री की ऐसी तस्वीर को प्रस्तुत करने वाले उनकी अपनी ही जमात के खाये–पिये आदमी हैं, जो अपने शब्दों के धोखे से आदिवासी स्त्री का इतना सरसचित्र खींचते हैं। इस तस्वीर से अलग आदिवासी लड़की जीवन के कठोर आँच में तपकर अपने जीवन का निर्वाह करती है यही उसके जीवन की सच्चाई है। आदिवासी स्त्री को न सिर्फ अपने पिता की चिंता है बल्कि अपनी माँ की चिंता कर वह ससुराल जाने से पहले कुछ कहती है–''सोचती हूँ/कौन दबाएगा अब तुम्हारे पाँव?/थके–माँदे वापस लौटे बापू को/कौन देगा अगुवाकर लोटा भर पानी/कौन लाएगा जंगल से बीन कर लकड़ियाँ?/गायों को चराने कौन ले जाएगा?''[5] कवयित्री अपनी माँ के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करती है। माँ के अनवरत कर्मरत होने का मूल्यांकन समाज की दृष्टि में भले ही न हो किन्तु उसके समर्पण का मूल्यांकन करना सम्भव ही नहीं है। वह कार्यरत रहती है। घड़ी के चलते रूकते रहने से उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे तो बस दिन में जगते और रात में ऊँघते हुए भी अनवरत कर्मरत रहना है। एक बेटी के रूप में वह कहती है – डरती हूँ इसी तरह/चलती रही माँ/और बझ रहे हम अपने खेल में/तो हमसे कहीं दूर न चली जाए माँ।''[6] इतना ही नहीं, जब एक माँ अपनी बेटी के लिए कुछ करने में असमर्थ होती है तो वह एक अपराधबोध से भर उठती है। इस अपराधबोध की अभिव्यक्ति भी पुतुल जी ने अपनी कविताओं में की है। 'मैं, मेरा दुःख और समुद्र' नामक कविता में वे कहती हैं कि वह केवल दुःखी नहीं है बल्कि उसके साथ अथाह जल वाला समुद्र भी दुःखी है। उसमें दुखों का पहाड़ इतना विशाल है कि समुद्र के जल में भी उसे सोखने की क्षमता नहीं रह गयी है। अतः उसे इस बात का एहसास हो जाता है कि केवल मात्र इस संसार में वही दुखी नहीं सबके सब दुखी हैं। ''ऐसे में तब मुझे लगा कि एक मैं ही/दुखी नहीं हूँ इस पूरे संसार में/बल्कि हर आदमी के अपने–अपने दुख हैं/जो अपने दुःखों को मुट्ठियों में छुपाए/घूम रहा है सुख की तलाश में।''[7] स्त्री अपने जीवन में इस प्रकार की पीड़ा यंत्रणा सहती रहती है कि वह ईश्वर से माँग करती है कि वह अगले जन्म में स्त्री होना नहीं चाहती। वह चाहती है कि अगले जन्म में सारे पुरुष स्त्री और सारी स्त्रियाँ पुरुष बनकर पैदा हों किन्तु ईश्वर दरबार में भी उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी क्योंकि वहाँ ईश्वर (पुरुष) ने यही प्रस्ताव पारित किया कि इस जन्म में स्त्री जीवन पाकर जन्मी स्त्रियाँ अगले जन्म में भी स्त्री जीवन की ही पीड़ा सहती रहेंगी – ''देवियों की माँग से ईश्वर समुदाय/सहमत भी है और असहमत भी/स्त्रियाँ! तुम्हारी माँग पूरी नहीं होगी/तुम अगले जन्म में फिर स्त्री ही होगी/पता चला है यही प्रस्ताव पारित हुआ है ईश्वर के संसद में।''[8] यही कारण है कि वह विद्रोह का बिगुल फूँक देती है। उसे अपने लिए अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए स्वयं की पहचान तथा स्वयं का घर तलाशने की जरूरत महसूस होती है। यही कारण है कि वह कहती है कि मेरे घर के बाहर नेमप्लेट भी मेरी नहीं मेरे पति की होती है। मैं स्वयं के अंदर एक घर की तलाश करती फिरती हूँ। उसे गर्भ ले लेकर बिस्तर तक कई–कई रूपों के लोग मिलते हैं परन्तु नहीं मिलती अपना घर। वह कहती है – ''धरती के इस छोर से उस छोर तक/मुट्ठी भर सवाल लिये मैं/दौड़ती–हाँफती–भागती/तलाश रही हूँ सदियों से निरंतर/अपनी जमीन अपना घर/अपने होने का अर्थ।''[9] वह एक अलग अस्तित्व है इसे मानने के लिए हमारा समाज तैयार नहीं है। यही कारण है कि वह अपनी वास्तविक स्थिति का भान करना चाहती है। वह चाहती है कि पुरुष भी उसके भोगे हुए यथार्थ से परिचित हो। उसके कर्मरत जीवन को नकार कर पुरुष पीठ थपथपाती हाथों से उसकी मांसलता नापने लगता है तथा उसके होंठों की पपड़ी को भुलकर उसकी उभरी छाती पर ही अपने–आप को केन्द्रित किये रहता है। यही कारण है कि वह उस पुरुष को सोचने के लिए प्रेरित करती है – ''सोचो कि कुछ देर के लिए ही सोचो, पर सोचो।''[10] इतना ही नहीं कवयित्री न सिर्फ अपने पिता–माता, ईश्वर तथा समाज एवं पुरुष वर्ग से सवाल करती है बल्कि स्त्री की कर्मठता उसकी सरलता एवं सहजता को कम करके आँकने की भूल न करने की भी सलाह देती है। 'या तुम जानते हो?' कविता में वह पुरुष से भिन्न स्त्री के एकान्त को लेकर उससे प्रश्न करती है। प्रेम और जाति से भिन्न स्त्री की सत्ता पर भी वह सवाल उठाती है। वह स्वयं को एक ही समय में स्थापित और निर्वासित करती रहती है। वह अपनों से ही अपने लिए लड़ती है। वह कहती है ''क्या तुम जानते हो/एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण/बता सकते हो तुम/एक स्त्री को स्त्री–दृष्टि से देखते/उसके स्त्रीत्व की परिभाषा?''[11] स्त्री के रूप में स्त्री होने के सत्य से कविता ओतप्रोत है। पुतुल जी ने अपने आसपास के लोगों को भी अपनी कविता का मुख्य चरित्र बनाया है। बाहामुनी, सजोनी किस्कू, चुड़का सोरेन जैसे पात्रों को रगड़ा कर व स्त्री जीवन के सत्यों को अभिव्यक्त करती है।

'बाहामुनी' के माध्यम से चटाई बुनने वाली महिला के कर्मरत सौन्दर्य का गुणगान करते हुए वह कहती है – चटाइयाँ बुनते वक्त तुम जमीन पर बैठी रहती हो और पंखा बनाते हुए तुम्हारे काले देह से टप–टप पसीना चूता है। जब तुम दातुन करती हो तो तुमसे पहले सैंकड़ों लोग दातुन कर भोजन पचा चुके होते हैं। इतना ही नहीं, उसके जीवन की विडम्बना यह है कि तुम्हारी हाथों से बनायी गयी झाड़ू से तुम्हारे ही घर में पहुँच जाते हैं बड़े लोगों के घर के कचरे। अतः बाहामुनी जीवनपर्यन्त अभावग्रस्त रहती है और दिल्ली तक उसकी बनी चीजें पहुँच जाती है। हल जोतने का काम स्त्रियों के हाथों करवाना एक जघन्य अपराध माना जाता है जबकि 'कुछ मत कहो सजोनी किस्कू' कविता के माध्यम से कवयित्री ने उस यथार्थ को हमारे समक्ष रख दिया जो हल जोतने के अपराध के रूप में सजोनी किस्कू को सहना पड़ा था। वह कहती है – जब तुमने चलाया था हल/तब डोल उठा था/बस्ती के माँझी थान में बैठे देवता का सिंहासन/गिर गयी थी पुश्तैनी प्रधानी कुर्सी पर बैठे/मगजहीन ''माँझी हाड़ाम' की पगड़ी/पता है बस्ती की नाक बचाने खातिर/तब बैल बनाकर हल में जोता था/जालिमों ने तुम्हें/खूँटे में बाँधकर खिलाया था भूसा।''[12] परन्तु उन सम्भ्रांत पुरुषों को अकड़ तब कहाँ चली गयी जब संथाल विद्रोह के समय घर के पुरुष सारा घर–बार स्त्रियों के ऊपर छोड़कर चले गये थे। तब न किसी की नाक कटी और न पगड़ी गिरी। औरतों को अपने हक की बात भी करना पुरुष वर्ग को स्वीकार नहीं। निर्मला पुतुल जी कहती हैं कि तुम्हारे पिता की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है। तुम्हारे हाथों में धनुष नहीं शोभता। सारे पुरुष प्रतिरूप तुम्हारे विरोधी हैं। यही कारण है कि वे कहती हैं – ''इन गूँगे बहरों की बस्ती में/किसे पुकार रही हो सजोनी किस्कू?/कहाँ लगा रही हो गुहार? यहाँ तो जाहरे और माँझीथान के देवता भी/बिक जाते हैं बोतल जीवन भर दारू में।''[13] स्त्री के कर्मरत को सदा पुरुषों वर्गों से कमतर कर आँका गया है। अतः वह कर्मरत होकर अपनी विरुद्ध जड़ता के आवरण से लड़ती जद्दोजहद करती दिखती है। पहाड़ों पर रहने वाली स्त्रियों के कठोर और दुर्गम जीवन को भी तुच्छ कर आँका जाता है। वह सिर पर रखकर सूखी लकड़ियाँ कठोर पहाड़ों से उतरती है और बाजार जाकर घर भर के पेट की आग बुझाने का उपाय करती है। बच्चों को पीठ पर लटकाए धान की रोपनी करती है। अपने पहाड़ से दुख को भूलाकर सुख की लहलहाती फसल उगाती है – चटाई बुनेगी, झाड़ु बनाएगी। पहाड़ तोड़ती, तोड़ रही है/पहाड़ी बंदिश और वर्जनाएं।''[14] पुतुल जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से कर्मरत स्त्री की अस्मिता की लड़ाई लड़ी है। वे न सिर्फ आदिवासी स्त्रियों को चटाई बुनते, झाड़ु बनाते हुए दिखाती हैं बल्कि गजरा बेचनेवाली, अखबार बेचने वाली लड़कियों के रूप में उसके सौन्दर्य को अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनकी जीवनगत विडम्बनाओं को वे अपनी कविता की भाषा में गढ़ती चलती हैं और कहती हैं – अजीब विडम्बना है कि/सुन्दरता बेचने वाली इस असुन्दर स्त्री के/सपनों में आती हैं/कई–कई गजरे वाली स्त्रियाँ/और इसका उपहास करती हुई/गुम हो जाती है आकाश में/तब गजरों में पिरोए फूल काँटे की तरह/चुभते हैं उसके सीने में।''[15] इतना ही नहीं, 'अखबार बेचती लड़की' कविता में अखबार की आड़ में उसके समान ही लड़कियों की तस्वीर को खोजते लोग मिलेंगे, अतः वह अखबार नहीं बेच रही स्वयं को ही बेच रही है। कवयित्री ने तो बड़े ही व्यंग्य भले लहजे में यहाँ तक कह दिया कि वह अखबार नहीं बल्कि रोटी के लिए अपनी आवाज बेच रही है। उसे सबकी आँखों का भद्दा मजाक बनना पड़ता है। यही भद्दा मजाक स्त्रियों के बलात्कार, गैंगरेप का कारण बन जाता है। तेजाब फेंक दुष्कर्म करना, छेड़खानी जैसी घटनाएँ स्त्री अस्मिता को तार–तार कर रही है। इस बलात्कार की हैवानियत के विरोध में समाज अधिक–से–अधिक कतारबद्ध होकर मौन विरोध करेगा। अतः वह रणचण्डी बन राक्षसों का संघर्ष करने उतरेगी। वह कहती है – तुम्हें आना होगा/रणचंडी बन दुर्गा बन, फूलों भानो बन/हाथों में भाला, फरसा, कुल्हाड़ी लिए/आना ही होगा इस धरती पर/और ऐसे राक्षसों का सरेआम/बद्ध करना होगा ... बद्ध करना होगा।''[16] यही कारण है कि आज की स्त्रियाँ अपना इतिहास स्वयं लिखने को तैयार होती है। वे विद्रोह का झंडा लेकर खड़ी हो जाती है। अपनी कमजोरियों को अपना हथियार बना लेती है। वह अपने नाम इतिहास के पन्नों में न देखकर आहत नहीं होती बल्कि स्वयं इतिहास रचने को कटिबद्ध हो जाती है। इस कारण वे कहती हैं – हम खून से लिखेंगे अपना इतिहास/आँसू से नहीं/हम आँचल को नहीं लहराएँगे/किसी झंडों की तरह/और नहीं जुल्फों की/बादल बनकर बरसने देंगे किसी पर/हमारी चूड़ियाँ की खनखनाहट और/पायलों की झनकार से/फूटेगा एक नया विद्रोह का बिगुल।''[17] अपने विद्रोह में वह अकेले नहीं बल्कि अपने सहगामी का भी साथ चाहती है क्योंकि बिना उसके वह समाज की जड़ताओं को तोड़ने में असमर्थ होगी। 'और तुम बाँसुरी बजाते रहे' ऐसी ही कविता है जहाँ स्त्री अस्मिता 'स्व' से निकलकर 'पर' पर केन्द्रित हो गयी है। वह मानो बाँसुरी बजाने वाले की तरफ से कोई प्रतिकार चाहती है। वह बाँसुरी बजाने में इतना निमग्न था कि कोई आकर कुछ ले जाए, कहीं आग लग जाए, कहीं जुलूस का शोर हो, परन्तु बाँसुरी बजाते रह गया। इस स्थिति को भाँप कर वह आदिवासी स्त्री विद्रोह कर बैठती है और कहती है – ''इस बार मैं चुप नहीं रहूँगी/छीनकर तोड़ दूँगी तुम्हारी बाँसुरी/कि देखो कि इस बार/वो मुझे उठाने आ रहे हैं।''[18] इस पर भी यदि कोई प्रतिक्रिया न करे तो उसका अस्तित्व ही शून्य माना जाएगा। वह इस प्रतिक्रिया के लिए जोर से चीखेगी, उसकी इस चीख एवं विद्रोह में इतनी शक्ति है कि उसकी आवाज बंद करके लिए जिस पत्थर से उसे मारा जाएगा, वह पत्थर ही चकनाचूर हो जाएगा। अपनी इस प्रतिक्रिया को सम्बल प्रदान करते हुए, पुतुल जी कहती है कि चाहे कितनी भी बाधाएँ आए, वह अपना विद्रोह करना नहीं छोड़ेगी। यही कारण है कि वह कहती है – ''गिरेंगी जितनी बूँदें लहू की धरती पर/उतनी ही जनमेंगी निर्मला पुतुल/हवा में मुट्ठी बँधे हाथ लहराते हुए।''[19]

अतः पुतुल जी ने अपनी कविता में आदिवासी स्त्री अस्मिता को व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी कविता व्यापक फलक में आज की तथाकथित आधुनिकता को आइना दिखाती है। यही कारण है कि उमाशंकर चौधरी के शब्दों में – "जब हम इसे भूमण्डलीकरण और पश्चिमीकरण की चकाचौंध के बरक्स रखकर देखते हैं जहाँ एक तरफ इतनी रोशनी है, बड़े–बड़े मॉल्स हैं और पूरी एक चमकदार दुनिया है, वहीं दूसरी ओर सिर्फ अपनी देह के साथ संघर्ष करती एक आदिवासी स्त्री।"[20] यही कारण है कि अरुण कमल जी कहते हैं – "आदिवासी जीवन विशेषकर स्त्रियाँ का सुख–दुःख अपनी पूरी गरिमा और ऐश्वर्य के साथ यहाँ व्यक्त हुआ है।"[21] निर्मला जी की कविताएँ स्त्री संवेदनाओं उसकी यथार्थता में व्यक्त करता है।

अध्ययन का उद्देश्य

इन दोनों ही संग्रहों के माध्यम से आदिवासी स्त्री अस्मिता की कहानी कही गयी है। इसमें भारतीय स्त्रियों के शोषण की यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है। आदिवासी समुदाय की स्थिति जहाँ बद से बदतर है वहीं उसी समुदाय की स्त्रियाँ अपनी चतुर्दिक शोषण की कहानी कहती नजर आती है। इस अध्ययन के माध्यम से आदिवासी समाज की स्त्रियों के दर्द को बयां किया गया है। इसमें स्त्री के घर की चारदिवारी में आबद्ध रहने से लेकर बलात्कार के शिकार होने तक की कहानी कही गयी है। वह बिकने तक को भी विवश है। वह अपनी जड़ तलाशती नजर आती है। वह जड़गामी प्रथाओं को अस्वीकार करती है तथा हल चलाने से लेकर धनुष चलाने तक के काम को निपुणता से करती है परन्तु उससे इस कार्य के लिए उसे घोर संघर्षों से गुजरना पड़ता है। वह हार नहीं मानती है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए रणचंडी का भी रूप धारण कर असुरों का संहार करने को तटस्थ रहती है। उसके इस रूप को अभिव्यक्त कर पुरुष समाज की निकृष्टता पर प्रश्न उठाए गये हैं। इन काव्यकृतियों के माध्यम से आदिवासी समाज के तह तक पहुँचने का प्रयास भी हुआ है, जो उसके जीवन के संघर्षों को खोल कर रख देता है।

साहित्यावलोकन

निर्मला पुतुल आदिवासी महिला कवयित्रियों में अपना विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वे अपनी भावाभिव्यक्ति आदिवासी भाषा में करती हैं जिसे अनुवादित कर हिन्दी के साहित्य संसार को समृद्ध करने का प्रयास किया गया है। उनकी दोनों काव्य–कृतियाँ 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' और 'बेघर सपने' आदिवासी स्त्री अस्मिता की कहानी कहती दिखती हैं। 'आदिवासी स्त्री अस्मिता और निर्मला पुतुल की कविताएँ' विषय पर 2018 में कोई शोध आलेख हमारी जानकारी में नहीं है। इस शोध आलेख के पूर्व आरले श्रीकांत लक्ष्मणराव की शोधपरक आलेख 'आदिवासी स्त्री–अस्मिता एवं अस्तित्व के सवाल और निर्मला पुतुल' 2015 में 'अपनी माटी' नामक ई–साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है किन्तु मेरा यह शोध आलेख विषय वस्तुगत दृष्टि से यदि देखें तो कुछ अलग दिखता है क्योंकि उसमें उन्होंने 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' को केन्द्र कर अपनी बात कही है जबकि मेरे इस शोध–आलेख में निर्मला जी की दोनों काव्य–कृतियों को लिया गया है। अतः इस दृष्टि से भी यह शोध–आलेख अपनी नयी उपादेयता सिद्ध करता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि निर्मला पुतुल की कविताओं में स्त्री अस्मिता विशेषकर आदिवासी स्त्रियों की दुःख–तकलीफ, आशा–निराशा, बोली–बानी, रीति–रिवाज एक साथ अभिव्यक्ति पाते हैं। आदिवासी स्त्रियों को बेचा जाना, उन्हें हल का धनुष न हाथ लगाने का विरोध करती है। वे अपने ही समुदाय की स्त्रियों की विशद अवस्था पर व्यथित होती हैं। वे चटाई बनाने वाली स्त्रियों को जमीन पर बैठा पाती है तथा झाडू बनाने वाली स्त्रियों को गंदगी से भरा पाती है क्योंकि उनसे बड़े लोगों ने उनके घरों में अपनी गंदगी फेंक देते हैं। यही कारण है कि वह अपना स्वयं का इतिहास लिखने को उद्धत है। वह बार–बार विद्रोह करेगी तथा बार–बार जन्म लेकर रूढ़िवादियों का नाश करने उतरेगी, यही उनकी कामना है। वे नहीं चाहती कि स्त्री के साथ बलात्कार होने पर लोग हाथों में मोमबत्ती लेकर विरोध करे बल्कि बलात्कारियों को कठिन से कठिन सजा दिलवाए। उसका विद्रोह यदि ध्वसंकारी हो तो भी उसे इसकी कोई चिंता नहीं क्योंकि अब वह और अत्याचार नहीं सहेगी। नहीं सहेगी इस उपेक्षा का आतंक। वह खुलकर विद्रोह करेगी और जरूरत पड़े तो अस्मिता की लड़ाई में अपनी अहम भूमिका निभाएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–9*
2. *पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–10*
3. *पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–104*
4. *पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–51*
5. *पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–47*
6. *पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, पृ0–12*
7. *पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, पृ0–23*
8. *पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, पृ0–70*
9. *पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, पृ0–30*
10. *पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, पृ0–36*

11. पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–8
12. पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–23
13. पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–24
14. पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–36
15. पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–33
16. पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, पृ0–88
17. पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, पृ0–74
18. पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, पृ0–21
19. पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, पृ0–91
20. पुतुल निर्मला – बेघर सपने (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2014, प्रकाशन – आधार प्रकाशन, फ्लैप पृष्ठ से
21. पुतुल निर्मला – नगाड़े की तरह बजते शब्द (काव्य–संग्रह), संस्करण – 2005, प्रकाशन – भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0–फ्लैप पृष्ठ से